साहित्य मनीषी

प्राध्यापकीय आलोचना की जकड़बन्दी की कैद से मुक्त भावी साहित्यकारों के प्रेरणास्रोत डॉ. देवेश ठाकुर

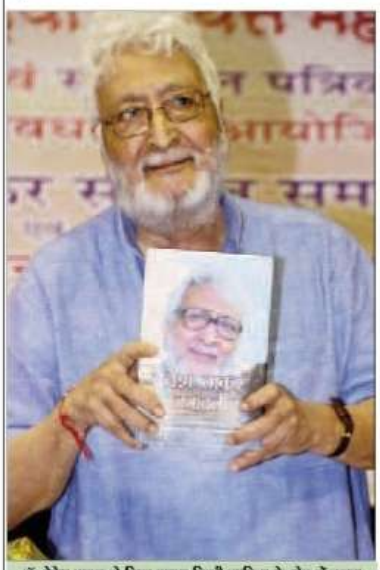

डॉ. देवेश ठाकुर ने जिस समय हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में कदम रखा वह नवीन चेतना के उन्मेष का युग था। आँधी की तरह उठे उस नवोन्मेष के आंदोलनों में जीवन मूल्य तिनके की तरह बह चले थे। उस दौर में निर्लिप्त भाव से वे समय-समय पर उन आंदोलनों के कमजोर-सशक्त दोनों पक्षों पर लिखते रहे। उस समय में हो रहे परिवर्तनों विशेषकर व्यक्ति की विकृतियों और जनता की विद्रूपताओं को वे निर्भीक अपनी रचनाओं में रेखांकित करते रहे। किसी भी प्रकार के वाद और आंदोलन के चौखटे में अपने लेखन को फिट करने की फिरकत उनकी कभी नहीं रही। गुटबाजी और खेमेबाजी से दूर अकेले चलते रहने को उन्होंने अपना दर्शन बनाया। इस नाते भी उनकी रचनाओं की घोर उपेक्षा होती रही फिर भी वे हर विवाद से दूर अनवरत अपनी रचनाओं से जुड़े रहे।

डा. जयश्री सिंह मुंबई विश्वविद्यालय में सहायक प्राध्यापक एवं शोध निर्देशक हैं। अध्यापन के साथ ही वह लेखन में भी सिद्धहस्त हैं और प्रायः सभी विधाओं में उनकी रचनाएं देश के प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं। उनका मूल मंत्र है-"शोध मेरी अभिरुचि, अध्यापन मेरा जज्बा"।।

डा. जयश्री सिंह

सुंदर, शोभनीय, गरिमापूर्ण व्यक्तित्व। बड़ी तरतीब से बेतरतीब बिखरे बाल। नीलकंठ की तरह जीवन में पिये गरल और उपेक्षाओं को सहज ही पी कर पचा लेने वाले। मित्रों और अध्येताओं के लिए सदा प्रखर आशुतोष। व्यवहार में सरल और निर्भीक इतना कि अपने संघर्ष के दिनों में शहर के दो प्रमुख व्यक्तियों - एक हिन्दी पत्रकारिता के शिरोमणि डॉ. धर्मवीर भारती और दूसरे धर्म्म विश्वविद्यालय के प्रथम विभागाध्यक्ष प्रो. सी. एल. प्रभात से विचारों में दो टूक मतभेद का खुल कर विरोध जताने वाले बल्कि अपना दो प्रमुख उपन्यास देवता के गुनाह और गुरुकुल इन्हीं दोनों नायकों के चरित्र पर रच देने वाले डॉ. देवेश ठाकुर मुंबई के हिन्दी प्राध्यापकों की पहली पीढ़ी के प्राध्यापक होने के साथ साथ सृजनशील रचनाकार हैं।

आमतौर पर विश्वविद्यालयों का प्राध्यापक वर्ग अपने करियर उन्मुख लेखन में निरे अकादमिक श्रम को सृष्ठ समीक्षाओं और ठेठ प्राध्यापकीय आलोचना की जकड़बन्दी में कैद रखता है। जिसके चलते उसके लेखन में सर्जनात्मक प्रतिभा का हिस्सा शून्य हो जाता है। इस कारण उसकी खूब आलोचना भी होती रहती है। ऐसे में देवेश ठाकुर उन विरले अध्यापकों में से हैं जिन्होंने आलोचना कर्म के साथ खूब सर्जनात्मक लेखन किया।

उन्होंने अपने जीवनकाल में शोध, समीक्षा, कविता, कहानी, उपन्यास, आत्मकथ्य, जीवनी, किशोर साहित्य, समाज और राजनीति, अनुवाद व संपादन (समीक्षित साहित्यिक पत्रिका) जैसी कई विधाओं में अपनी सशक्त लेखनी चलायी। आज 85 वर्ष की उम्र में वे 66 से अधिक पुस्तकें (लगभग 8000 से अधिक पृष्ठ) लिख चुके हैं। भारतीय ज्ञानपीठ से 1975 में छपा उनका प्रथम उपन्यास अपने नवीन विषय और चेतना प्रवाही शैली (stream of consciousness) के कारण व्यापक स्तर पर चर्चित रहा।

डॉ. देवेश ठाकुर ने जिस समय हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में कदम रखा वह नवीन चेतना के उन्मेष का युग था। आँधी की तरह उठे उस नवोन्मेष के आंदोलनों में जीवन मूल्य तिनके की तरह बह चले थे। उस दौर में निर्लिप्त भाव से वे समय-समय पर उन आंदोलनों के कमजोर-सशक्त दोनों पक्षों पर लिखते रहे। उस समय में हो रहे परिवर्तनों विशेषकर व्यक्ति की विकृतियों और जनता की विद्रूपताओं को वे निर्भीक अपनी रचनाओं में रेखांकित करते रहे। किसी भी प्रकार के वाद और आंदोलन के चौखटे में अपने लेखन को फिट करने की फिरकत उनकी कभी नहीं रही। गुटबाजी और खेमेबाजी से दूर अकेले चलते रहने को उन्होंने अपना दर्शन बनाया। इस नाते भी उनकी रचनाओं की घोर उपेक्षा होती रही फिर भी वे हर विवाद से दूर अनवरत अपनी रचनाओं से जुड़े रहे।

मैं यूँ तिथ शोधक से तीन खंडों में उन्होंने अपनी आत्मकथा रची। दो वर्ष की रोटी के जुगाड़ के लिए सुदूर उत्तराखण्ड की पहाड़ी से यहाँ बंबई में आकर बसे देवेश ठाकुर जी का सुरुआती जीवन बहुत ही संघर्षपूर्ण रहा। उनके जीवन में लगातार अप्रिय घटनाएँ घटती रहीं। सुख-दुःख जैसे लगातार उन्हें घेरे रहे। संघर्ष के दिनों में कई बार उन्हें भूखे पेट भी सोना पड़ा।

देवेश ठाकुर जी ने अपनी मशहूर दिनचर्या और मेहनत स्वभाव के कारण चाटुकारिता प्रिय मठाधीशों के संसार में जहाँ अपने खुल सारे सबु बनाये वहीं अपने पर जान छिड़कने वाले मित्र भी अर्जित किये। वह हमारे इस दौर में निर्लिप्त और बौद्धिकता से भी कभी आगे की बुनियादी जीवन मूल्यों, नैतिक ईमानदारी और सोद्देश्य उठाने के साहस से जुड़ी महत्वपूर्ण चीज है।

एक व्यक्ति जो अपने लेखन से इतना सहज जुड़ा रहा, वह उसी समय अपने परिवार में भी आत्मिक और कलात्मक रूप से सम्बद्ध रहा। इसका प्रमाण उस कार्यक्रम में उनकी दो पुत्र नलिनी की सक्रिय उपस्थिति को देखकर मिला। पत्नी शीला के गुजर जाने के बाद लेखन को ही उन्होंने अपना जीवन मान लिया। दस वर्षों से दिल के मरीज होने के साथ लेखन ही उनकी प्राणशक्ति बनी रही। इस समय भी वे उनके सान्निध्य पूर्णाहुति की ओर हैं और लगातार लेखन जारी है। इतने समय के बाद भी अपने कर्तव्य में उन्होंने कहा कि अभी बहुत काम करना बाकी है। एलिया से भरे शहर में पिछले छह दशकों से साहित्य को साधना में लीन देवेश ठाकुर के लिए लिखना ही उनका जीना है या ये कह लें कि लिखना ही उन्हें जिलाये हुए है।

सेवाकाल के दिन डॉ. देवेश ठाकुर जी को उपाधी की वर्णगाँठ पर रुईया महाविद्यालय द्वारा आयोजित सारगर्भ सम्मान में दूसरी बार उनके अद्यतन लेखन कार्य की रचनावली (16 खंडों में) का लोकार्पण हुआ। (पहली बार उनकी सेवानिवृत्ति 1992 के कार्यक्रम में 7 खंडों में उनकी रचनावली प्रकाशित हुई थी।) अध्यापकीय जिम्मेदारियों और समीक्षात्मक लेखन के अलावा मौलिक खंडों में एक प्राध्यापक के कृतित्व का लोकार्पण शहर की नई-पुरानी पीढ़ी के प्राध्यापकों, लेखकों और उत्तराखण्ड वासियों के लिए गर्व का विषय रहा।

प्रसंगवशों के बीच घिरे किंतु तटस्थ उत्सवमूर्ति डॉ. देवेश ठाकुर जी निर्लिप्त भाव से मंच पर बैठे रहे। कार्यक्रम के अंत में मित्र गणों से मिलने, चित्र खिंचवाने के बाद देर तक अपने पुराने विद्यार्थियों के बीच घिरे रहे। (वे विद्यार्थी जो एक लंबी नौकरी के बाद इस समय अपने सेवाकार्य से निवृत्त हो चुके हैं और अपने प्रिय प्राध्यापक के सहरसा आयोजन में खुशी के सहारे चलते हुए सस्नेह पधारे थे।) एक शिक्षक के लिए इससे बड़ी उपलब्धि और क्या हो सकती है कि सालों साल बाद उनके विद्यार्थी अपने शिक्षक के सम्मान में अन्य जरूरी काम छोड़ कर बड़ी संख्या में उपस्थित रहें।

बौद्धिक और भावात्मक ऊर्जा से भरे इस बहुआयामी व्यक्तित्व को देख कर कोई भी एक क्षण के लिए यह सोचने पर विवश हो सकता है कि हमारे साथ का एक ऐसा दुबले और कर्मठ व्यक्ति हमारी और आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा स्रोत बना रहेगा। देवेश ठाकुर जी के सम्मान में शहर के कई प्रमुख रचनाकार-सुधा अरोड़ा, सूर्यबाला, विश्वनाथ सचदेव, जितेंद्र भाटिया, विजय कुमार, इस्मी मल इस्मी, कमलेश वाजपेयी, डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे, डॉ. राजन महाराज पिल्लै, डॉ. सतीश पाण्डेय सहित मुंबई के कई रचनाकार, प्राध्यापक, पत्रकार, सालों साल पुराने विद्यार्थी एवं रुईया महाविद्यालय के (जहाँ से वे 1992 में सेवानिवृत्त हुए) प्राध्यापक-छात्र बड़ी संख्या में कार्यक्रम में उपस्थित रहे।